भारतीय शिक्षा की गुणवत्ता एवं प्रबन्धन

डॉ0 अवधेश कुमार श्रीवास्तव
प्राचार्य
रघुवीर महाविद्यालय
रघुवीर नगर थलोई जौनपुर
मो0 : 9450896029
E-mail - avadheshkumar.phd@gmail.com

शिक्षा शब्द का सीमित या विस्तृत दोनो अर्थों में इस्तेमाल किया जाता है जो जीवनभर चलती रहती है, और जो जीवन के किसी भी अनुभव से आगे बढ़ सकती है। इस अर्थ में शिक्षण–सामग्री जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मिलती है। शिक्षा की अवधारणा मुख्यतः इस प्रकिया पर जोर देती है जिससे व्यक्तित्व विकसित होता है और जिससे हम मनुष्य और मनुष्य के सम्बन्धों को तथा आदमी और ब्रह्मण्ड के सम्बन्धों को पहचानते है।

संकीर्ण अर्थ में 'शिक्षा' का मतलब सचेतन रुप से निर्देशित क्रियाकलाप है जो हम स्कूल और कालेज में पाते है, वह इसके अन्तर्गत आती है। शिक्षक अपने शिष्यों के समक्ष विचारों और बिम्बों को रखता है ताकि एक खास दिशा में उनका मानसिक और मनोवैज्ञानिक विकास हो। विद्यार्थी शिक्षण संस्थानों में शिक्षा पाने के लिए प्रविश्ट होते हैं। प्रोफेसर डेवी ने अपनी पुस्तक 'डेमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन' में 'साभिप्राय' शिक्षा का जिक्र इस फर्क को बताने के लिए किया है कि शिक्षा अचेतन से आती है या इसका कोई निश्चित उद्देश्य होता है।[1]

प्राचीन हिन्दू सामाजिक संरचना का एक आदर्श रुप आश्रम–व्यवस्था है। हिन्दू दर्शन के अनुसार जीवन चार अवस्थाओं या आश्रमों में विभाजित है–ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ एवं संन्यास। विभाजन की यह व्यवस्था धर्मशास्त्रीय अनुमोदन पर आधारित है। इसका उल्लेख उपनिषद में हैं। अतः यह व्यवस्था ईसा से 700 या 800 वर्ष पूर्व में विकसित हुई होगी।

ब्रह्मचर्य आश्रम व्यवस्था का पहला आश्रम है। इसकी अवधि 25 वर्षों तक की मानी गई है। इसका आरम्भ उपनयन संस्कार के बाद ब्राह्मण बालक के लिए 8 वर्ष की आयु से क्षत्रिय बालक के लिए 11 वर्ष की आयु से एवं वैश्य बालक के लिए 12 वर्ष की आयु से ब्रह्मचर्य आश्रम शुरु होता है। ब्रह्मचर्य दो शब्दों से बना है–ब्रह्म एवं चर्य। ब्रह्म का अर्थ होता है महान तथा चर्य का अर्थ विचरण करना। इस रुप में ब्रह्मचर्य का अभिप्राय ऐसे मार्ग पर चलना जिससे पुरूष शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से महान हो सकते है।

ब्रह्मचर्य आश्रम में बालक उपनयन संस्कार के बाद गुरूकुल में गुरू के साथ 25 वर्षों तक निवास करता था। इस आश्रम में बालक का मूल कर्म स्वयं पर नियंत्रण, अध्ययन–अध्यापन, प्रशिक्षण व शारीरिक–मानसिक अध यात्मिक विकास रहा तथा मूल धर्म गुरू सेवा रहा। इस आश्रम के कर्म व धर्म को पूरा करने के बाद बालक स्नातक बनता था।[2]

प्राचीन भारतीय सभ्यता विश्व की सर्वाधिक रोचक तथा महत्वपूर्ण सभ्यताओं में से एक है। प्राचीन भारतीयों की दृष्टि में शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास का साधन है। इसका उद्देश्य मात्र पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करना नहीं था अपितु मनुष्य के स्वास्थ्य का भी विकास करना था। प्राचीन शिक्षा पद्धति का प्रमुख उद्देश्य चरित्र का निर्माण करना तथा व्यक्तित्व का विकास करना था। नागरिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यों का ज्ञान, सामाजिक सुख तथा कौशल की वृद्धि, संस्कृति का संरक्षण तथा प्रसार, निष्ठा तथा धार्मिकता का संचार करना था।

ऋग्वैदिक अथवा पूर्व वैदिक काल में शिक्षा का मुख्य पाठ्यक्रम बौद्धिक सभ्यता का अध्ययन ही था। पवित्र वैदिक ऋचाओं के अतिरिक्त इतिहास, पुराणा तथा गाथाएं एवं खगोल विद्या, ज्यामिति, छन्दशास्त्र आदि अध्ययन के विषय थे। वैदिक साहित्य का अध्ययन भी नौ या दस वर्ष की अवस्था में प्रारम्भ होता था। इस युग के स्नातक वेदों तथा 18 शिल्पों में निपुण होते थे। 18 शिल्प निम्नलिखित थे।

1. गायन	2. वादन	3. चित्रकला	4. गणित
5. नृत्य	6. गणना	7. यन्त्र	8. मूर्तिकला
9. कृषि	10. पशुपालन	11. वाणिज्य	12.चिकित्सा
13. विधि	14. प्रशासनिक प्रशिक्षण	15. धनुर्विद्या तथा सैनिक शिक्षा	
16. जादूगरी	17. सर्पविद्या तथा विष दूर करने की विधि		
18. छिपे हुए धन के पता लगाने की विधि			

वात्स्यायन के कामसूत्र से 64 कलाओं का उल्लेख मिलता है, जिनका अध्ययन सुसंस्कृत महिला के लिए अनिवार्य बताया गया है। ये पाकविद्या, शारीरिक प्रसाधन, संगीत, नृत्य, चित्रकला, सफाई, सिलाई–कढ़ाई, व्यायाम, मनोरंजन आदि से सम्बन्धित है। कामसूत्र के अतिरिक्त कादम्बरी, शुक्रनीतिसार, ललितविस्तार आदि में भी 64 कलाओं का उल्लेख मिलता है।

प्राचीन भारतीय साहित्य तथा विदेशी यात्रियों के विवरण से पता चलता है कि यहाँ शिक्षा के पाठ्यक्रम में चार वेद, छः वेदांग, 14 विधाएं, 18 शिल्प, 64 कलाएं आदि सम्मिलित थे। हवेनसांग अल्बरुनी के विवरण से पता चलता है कि व्याकरण तथा ज्योतिष की शिक्षा का भारत में बहुत अधिक प्रचलन था।

वैदिक युग के आरम्भ में शिक्षा मौखिक होती थी। पवित्र मन्त्रोंको कंठस्थ करने पर बल दिया जाता था। पुरोहितवर्ग के लोग विशेष रुप से मन्त्रों को याद कर लिया करते थे। सामान्य जन केवल कुछ प्रसिद्ध मन्त्रों को ही याद किया करता था। ''निरुक्त' में ऐसे व्यक्ति की निन्दा की गई है जो कि मन्त्रों की व्याख्या बिना जाने ही याद कर लेते थे। शास्त्रार्थ के निमित्त गोष्ठियों का आयोजन किया जाने लगा, जिसमें विद्यार्थी बहुधा भाग लिया करते थे। विद्वान वही माना जाता था जिसकी जिहवा पर समस्त विषय रटे हुये हों। प्राचीन काल के लेखक भी यही अभिलाशा रखते थे कि उनकी रचनाएं विद्वानों का कण्ठाभूषण बनें।

प्राचीन भारतीय शिक्षा का एक प्रमुख तत्व गुरुकुल व्यवस्था है। इसमें विद्यार्थी अपने घर से दूर गुरू

के घर पर निवासकर शिक्षा प्राप्त करता था। कभी–कभी वह शिक्षा केन्द्रों से सम्बद्ध छात्रावासों में निवास कर करता था। धर्मग्रन्थों में विहित है कि विद्यार्थी उपनयन संस्कार के साथ ही गुरूकुल में निवास करें तथा विविध विषयों की शिक्षा प्राप्त करें। गुरू के समीप रहते हुए विद्यार्थी उसके परिवार का सदस्य हो जाता था तथा गुरू उसके साथ पुत्रवत व्यवहार करता था। गुरूकुल में ब्रह्मचर्यपूर्वक रहते हुए विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करता था। गुरू की सेवा करना उसका परम कर्तव्य था। उसकी सेवाओं के बदले गुरू विविध विधाओं और कलाओं की शिक्षा प्रदान करता था।

बौद्ध धर्म की उन्नति के साथ–साथ विहार भी शिक्षा के केन्द्र बन गये थे तथा कुछ ख्याति प्राप्त महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के रूप में विकसित हो गये थे। प्राचीन भारत के प्रमुख विश्वविद्यालयों का विवरण इस प्रकार है–

1. **नालन्दा विश्वविद्यालय–** प्राचीन भारत के शिक्षा केन्दों में नालन्दा विश्वविद्यालय का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है। बिहार प्रान्त कीराजधानी पटना के दक्षिण में लगभग 40 मील की दूरी पर आधुनिक बडगांव नामक ग्राम के समीप यह स्थित था। राजगृह से नालन्दा की दूरी लगभग 8 मील है। सर्वप्रथम यहाँ एक बौद्ध विहार की स्थापना गुप्तकाल में करवाई गई। चीनी यात्री हवेनसांग लिखता है कि इसका संस्थापक ''शक्रादित्य'' था जिसने बौद्ध धर्म के त्रिरत्नों के प्रति महती श्रद्धा के कारण इसकी स्थापना करवाई थी। यद्यपि नालन्दा महायान बौद्ध धर्म की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था, तथापि यहाँ अन्य अनेक विषयों की शिक्षा भी समुचित रूप से प्रदान की जाती थी। पाठ्क्रम में महायान तथा बौद्ध धर्म के अठारह सम्प्रदायों के ग्रन्थों आदि की शिक्षा व्याख्यानों के माध्यम से दी जाती थी।

2. **बल्लभी विश्वविद्यालय– गुजरात के कठियावाड़ क्षेत्र में आधुनिक 'बल' नामक स्थान पर स्थित बल्लभी पंश्चिम भारत में शिक्षा तथा** संस्कृत का प्रसिद्ध केन्द्र था। जहाँ नालन्दा कोटि का एक विश्वविद्यालय था। इस नगर की स्थापना मैत्रक शासक भट्टार्क ने किया था। यहाँ मैत्रक राजवंश की राजधानी थी । सातवीं शती में बल्लभी एक प्रसिद्ध व्यापारिक एवं शैक्षणिक केन्द्र बन गया। ह्वेनसांग इस नगर की समृद्धि का वर्णन करता है। उसके अनुसार यहाँ एक सौ बौद्ध विहार थे जिनमें लगभग 6000 हीनयानी भिक्षु निवास करते थे। नगर की परिधि छः मील के घेरे में थी।

3. विक्रमशिला विश्वविद्यालय– विहार प्रान्त के भागलपुर जिले में स्थित विक्रमशिला नालन्दा के ही समान एक अन्तर्राष्टीय ख्याति का शिक्षा केन्द्र रहा है। इसकी स्थिति भागलपुर से 24 मील पूर्व की ओर पत्थरघाट नामक पहाड़ी पर बतायी गयी है। जहाँ से प्राचीन काल के विस्तृत खण्डहर प्राप्त होते है। विक्रमशिला के महाविहार की स्थापना पाल नरेश धर्मपाल (775–800 ई0) ने करवाई थी। उसने यहाँ मन्दिर तथा मठ बनवाये और उन्हें उदारतापूर्वक अनुदान किया। यहाँ 160 विहार तथा व्याख्यान के लिए अनेक कक्ष बने हुए थे। विक्रमशिला विश्वविद्यालय में छः महाविद्यालय थे। प्रत्येक में एक केन्द्रीय कक्ष तथा 108 अध्यापक थे। केन्द्रीय कक्ष को विज्ञान भवन कहा जाता था। प्रत्येक महाविद्यालय में एक प्रवेश द्वारा होता था तथा प्रत्येक द्वार पर एक–एक पंडित बैठता था। द्वारपंडित के परीक्षण करने के बाद ही महाविद्यालय में प्रवेश होता था। कनिष्क के

शासनकाल में निम्नलिखित द्वारपंडितों के नाम हमें मिलते हैं–

1.	पूर्व द्वार	–	आचार्य रत्नाकर शान्ति
2.	पश्चिमी द्वार	–	वागीश्वर कीर्ति(वाराणसेय)
3.	उत्तर द्वार	–	नरोप
4.	दक्षिण द्वार	–	प्रज्ञाकरमति
5.	प्रथम केन्द्रिय द्वार	–	रत्नब्रज(कश्मीरी)
6.	द्वितीय केन्द्रीय द्वार	–	ज्ञानश्रीमित(गौडीय)

विश्वविद्यालय में अध्ययन के विशेष विषय व्याकरण, तर्कशास्त्र, मीमांसा, तन्त्र, विधिवाद आदि थे। आचार्यों में दीपशंकर श्री ज्ञान का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है जो इस विश्वविद्यालय के कुलपति थे। इस प्रकार विक्रमशिला ग्यारहवी–बारहवीं शती में भारत का सर्वाधिक सम्पन्न सुसंगठित तथा प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय था।[3]

प्राचीन शिक्षा पद्धति में आधुनिक युग की भाँति परीक्षा लेने तथा उपाधि प्रदान करने की प्रथा का अभाव था। विद्यार्थी गुरु के सीधे सम्पर्क में रहते थे। अध्ययन की समाप्ति पर समावर्तन नामक संस्कार आयोजित होता था तत्पश्चात् छात्र एक विद्वत्मण्डली के सामने प्रस्तुत किया जाता था। वहाँ उसके अध्ययन से सम्बन्धित कुछ गूढ़ प्रश्न पूछे जाते थे तदन्तर वह स्नातक बन जाता था।

उपाधि प्रदान करने की प्रथा मध्यकाल की उपज है। तारानाथ के विवरण से पता चलता है कि बंगाल के पाल शासक विक्रमशिला के छात्रों की अध्ययन की समाप्ति पर सनद(क्पचसवउंद्ध प्रदान करते थे। विद्वत्परिषद द्वारा 'तर्कचक्रवर्ती' तथा 'तर्कलंकार' जैसी उपाधियाँ प्रदान की जाती थी। किन्तु प्राचीनकाल में इस प्रकार की कोई प्रथा नहीं थी। प्राचीन काल के छात्रों का उद्देश्य आधुनिक युग के छात्रों की भाँति उपाधियों के पीछे दौड़ना नहीं था।

4. **उडयन्तपुर महाविहार**–इस महाविहार के स्थापना पाल वंश के प्रवर्तक राजा गोपाल ने की। यह महाविहार धीरे–धीरे उन्नति करता रहा। बारहवीं सदी में यह शिक्षा का बड़ा केन्द्र बन गया। इसमें हजारों आचार्य और विद्यार्थी रहते थे। यह महाविहार एक दुर्ग के समान था। 1199 ई0 में मोहम्मद विन बख्तियार खिलजी ने इस पर आक्रमण किया। महाविहार के आचार्यों एवं विद्यार्थियों ने डटकर मुस्लिम सेना का मुकाबला किया और लड़ते–लड़ते वे सब मर गये। मोहम्मद ने वहाँ के पुस्तकालय को जला दिया और महाविहार का नाश कर दिया।[4]

आज के विकसित परिवर्तनशील समाज में जैसे– जैसे धार्मिक नियमों, प्रथाओं तथा परम्पराओं का प्रभाव कम होता जा रहा है, शिक्षा को सामाजिक नियन्त्रण के अधिक प्रभावपूर्ण उपकरण के रूप में देखा जाने लगा है। शिक्षा केवल सामाजिक करण की ही एक प्रक्रिया नही है, बल्कि सामाजिक और संस्कारित मूल्यों को आगामी पीढ़ियों तक पहुंचाने तथा विभिन्न समस्याओं का हल ढूढने में भी इसे सबसे अच्छे माध्यम के रुप

में देखा जाता है। शिक्षा केवल सैद्धान्तिकरण ही नहीं है। इसका व्यवहारिक मूल्य इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक नियन्त्रण स्थापित करने तथा व्यक्तिगत व्यवहारों में सन्तुलन बनाये रखने के क्षेत्र में शिक्षा एक अत्यधिक प्रभावशाली माध्यम सिद्ध हुआ है। सामाजिक नियन्त्रण के दूसरे साधन जहाँ प्रचार, दबाव, उत्पीड़न और तिरस्कार को महत्व देते हैं, वहीं शिक्षा तर्क, विवेक और यथार्थता का ज्ञान कराकर अनौपचारिक रुप से व्यक्ति के व्यवहारों पर नियन्त्रण रखती है।[5]

आज के परिवेश में शिक्षा बाल्यावस्था से ही प्रारम्भ होती है एवं विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों द्वारा यह शिक्षा प्रदान की जाती है। प्राचीन काल की शिक्षा और वर्तमान काल की शिक्षा में प्रमुख अन्तर यह है कि वह मौखिक थी और यह लिखित है। आज वर्तमान में विश्व की जनसंख्या का एक बड़ा भाग गरीबी रेखा के नीचे जी रहा है एवं अज्ञानता का शिकार है जिसके कारण वह निरक्षरता के अभिशाप से ग्रसित है। अतः आज इस बात के लिए प्रयत्नशील रहना है कि हमारे देशवासी शिक्षित हों। इस हेतु कई कल्याणकारी योजनाएं चलाई जाती है। जिसमें से प्रौढ़ शिक्षा एक है। सामान्यतः 40 वर्ष या इससे अधिक उम्र के व्यक्ति को प्रौढ़ माना जाता है। प्रौढ़ों को दी जाने वाली शिक्षा ही प्रौढ़ शिक्षा कहलाती है। इसके अलावाँ आज की दूसरी प्रमुख शिक्षा 'औचारिकेत्तर' शिक्षा है जो मान्यता प्राप्त एवं योजनाबद्ध पद्धति पर आधारित है किन्तु इसका शिक्षण क्षेत्र संस्थागत नहीं होता है। इसका मुख्य क्षेत्र व्यवसाय तथा व्यक्ति का कार्य क्षेत्र होता है तथा इसमें उन लोगों को प्राप्त करने का अवसर दिया जाता है जिन्होंने विद्यालयीय या संस्थागत शिक्षा विल्कुल प्राप्त नहीं की या उसे अधूरा छोड़ दिया है। सामान्यतः इसका मुख्य क्षेत्र ग्रामीण होता है और औपचारिकेत्तर शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति की मनोवृत्ति, अवधारणा बौद्धिक स्तर तथा कार्यदक्षता में परिवर्तन लाया जाता है। इस शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य निर्धनों व स्त्रियों को लाभ पहुँचाना, उन्नत जीवन स्तर बनाने में सहायक, राष्ट्रीय विकास में सहायक, व्यवहारिक मूल्यांकन लचीलापन, स्थानीय व्यक्तियों व स्वयं सेवी संस्थाओं का योगदान, दार्घकालीन प्रभाव, आवश्यकता मूलक शिक्षण, नवाचार और सहभागिता एवं व्यक्तिगत विकास है।

सन् 1950 के अन्त तक क्षेत्रीय स्तर पर सामुदायिक मन्त्रालय के तत्वाधान में पुनश्चर्या पाठ्यक्रम तथा शिक्षण केन्द्र की व्यवस्था की गई। बाद में आवश्यकतानुसार सरकारी तथा गैर सरकारी कार्यकर्ताओं के लिए भी प्रशिक्षण व्यवस्था की गई। साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत विषय विशेषज्ञों को भी प्रशिक्षित करने का उपक्रम बनाया गया। प्रसारकर्मियों हेतु ग्रामीण स्तर पर देश में 100 ग्राम सेवक प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की गई जिसमें सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों पक्षों की गहनतम् प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई।[6]

इस प्रकार भारतीय शिक्षा की गुणवत्ता एवं प्रबन्धन प्राचीन काल से लेकर आज आधुनिक काल तक स्पष्ट रुप से द्रष्टव्य है। दोनों का मौलिक अन्तर भी स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. समाजशास्त्र– गोपीरमण प्रसाद सिंह, मिश्रा ट्रेडिंग कॉरपोरेशन, मैदागिनी वाराणसी। पेज नं0 22,23
2. समाजशास्त्र– परिमल बी0 कर, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स, पेज नं0 469,470
3. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, डॉ0 कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, यूनाइटेड बुक डिपों 21 यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद पेज नं0 766,770,771,773,777
4. प्राचीन भारत का इतिहास, विद्याधर महाजन, एस0 चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0 रामनगर, नई दिल्ली, पेज नं0 672
5. समाजशास्त्र– जी0 के0 अग्रवाल, एस0बी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा पेज नं0 33,35
6. प्रासार एवं संचार– डॉ0 मंजु पाटनी, डॉ0वी0 डी0 हरपालानी, स्टार पब्लिकेशन्स

डॉ0 अवधेश कुमार श्रीवास्तव

प्राचार्य

रघुवीर महाविद्यालय

रघुवीर नगर थलोई जौनपुर

मो0 : 9450896029

E-mail - avadheshkumar.phd@gmail.com